

## जनजातीय समाज- नीतियां एवं कल्याण योजनाएँ

डा० मुन्ना कुमार वरुण



सहायक आचार्य समाजशास्त्र, ने० मे० शिव नारायण दास पी जी कालेज बदायूँ

### शोध सार

भारत एक विविधतापूर्ण समाज है, जिसमें जनजातीय समुदायों का महत्वपूर्ण स्थान है। जनजातियाँ अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, परंपराओं, सामाजिक व्यवस्था तथा जीवन-पद्धति के कारण भारतीय समाज की अलग पहचान रखती हैं। भारत में अनेक जनजातीय समुदाय विभिन्न क्षेत्रों में निवास करते हैं। जनजातीय समाज के अध्ययन में जी. एस. घुरिये, वेरिअर एल्विन, निर्मल कुमार बोस तथा डी. एन. मजूमदार जैसे समाजशास्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जनजातीय समुदायों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। इनमें गरीबी, ऋणग्रस्तता, बेरोजगारी, भूमि एवं वन संबंधी समस्याएँ, अशिक्षा, कुपोषण तथा सांस्कृतिक संरक्षण की चुनौती प्रमुख हैं। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने अनुसूचित जनजातियों के विकास और संरक्षण के लिए अनेक विशेष प्रावधान किए। अनुच्छेद 15, 16, 46, 244, 330, 332 तथा 342 आदि के माध्यम से शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और प्रशासनिक संरक्षण की व्यवस्था की गई। जनजातीय नीति के अंतर्गत पृथक्करण, एकीकरण और सात्मीकरण जैसी विचारधाराओं पर चर्चा हुई। वर्तमान में जनजातीय विकास का उद्देश्य उनकी संस्कृति और पहचान को सुरक्षित रखते हुए उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा आर्थिक अवसर उपलब्ध कराना है। छात्रवृत्ति, छात्रावास, आश्रम विद्यालय, व्यावसायिक प्रशिक्षण, अनुसंधान संस्थान और विपणन सहायता जैसी योजनाएँ जनजातीय कल्याण में सहायक हैं।

**Keywords:** जनजाति, जनजातीय समाज, जनजातीय विकास, जनजातीय नीति, कल्याण योजनाएँ, संविधान, अनुसूचित जनजाति, संरक्षण, एकीकरण, सात्मीकरण, शिक्षा, आर्थिक विकास।

### प्रस्तावना

भारत एक बहुलतावादी और मिश्रित समाज है, जिसकी सामाजिक संरचना अनेक जातीय, धार्मिक, भाषाई, सांस्कृतिक तथा क्षेत्रीय समूहों के सह-अस्तित्व पर आधारित है। भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में विविधता के बीच एकता तथा विभिन्न सामाजिक समूहों का पारस्परिक सह-अस्तित्व है। इन समूहों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नताएँ दिखाई देती हैं। भारतीय इतिहास के प्राचीन काल से ही स्थापित राज्यों और उनके साथ अपने विशिष्ट सामाजिक नियमों, परंपराओं, रीति-रिवाजों तथा जीवन-पद्धतियों के अनुसार जीवनयापन करने वाले स्वतंत्र जनजातीय समुदायों के सह-अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस दृष्टि से भारत में जनजातीय समाज की उपस्थिति केवल आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था का परिणाम नहीं है, बल्कि इसकी जड़ें भारतीय इतिहास की प्राचीन सामाजिक संरचना में गहराई तक विद्यमान हैं।

भारत के सामाजिक परिदृश्य में जनजातीय समाज का विशिष्ट स्थान है। सामान्यतः जनजातीय समुदायों के लिए 'आदिवासी' शब्द का

प्रयोग किया जाता है। 'आदिवासी' शब्द का सामान्य अर्थ 'आदि काल से निवास करने वाला' अथवा 'मूल निवासी' माना जाता है। हालांकि, अकादमिक और संवैधानिक संदर्भों में 'जनजाति' तथा 'अनुसूचित जनजाति' शब्द अधिक प्रचलित हैं। भारत में जनजातीय समुदाय विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फैले हुए हैं और उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं में पर्याप्त विविधता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की अनुसूचित जनजाति आबादी लगभग 10.45 करोड़ थी, जो देश की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत है। इनकी एक बड़ी आबादी मध्य भारत की उस पट्टी में निवास करती है, जिसे प्रायः जनजातीय क्षेत्र या जनजातीय बेल्ट के रूप में जाना जाता है। इसमें मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान तथा आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के कुछ क्षेत्र प्रमुख हैं।

जनजातीय समाज को भारतीय सामाजिक संरचना के एक स्वतंत्र और विशिष्ट अंग के रूप में समझना आवश्यक है। जनजातीय समाज और जाति-आधारित समाज की संरचना, सामाजिक संगठन, आर्थिक गतिविधियों तथा सांस्कृतिक परंपराओं में कई महत्वपूर्ण अंतर पाए जाते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि इन दोनों के बीच किसी भी प्रकार का संपर्क नहीं रहा है। ऐतिहासिक रूप से जनजातीय समुदायों और गैर-जनजातीय समाजों के बीच निरंतर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संपर्क रहा है। इसके बावजूद जनजातीय समुदायों ने अपनी विशिष्ट पहचान, सामाजिक संस्थाओं, परंपराओं और सामुदायिक जीवन-पद्धति को लंबे समय तक बनाए रखा है। इसलिए जनजातीय समाज को केवल जातीय समाज के विस्तार के रूप में देखना उचित नहीं होगा। यह व्यापक भारतीय समाज का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण अंग है, जिसकी अपनी अलग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सांस्कृतिक पहचान है।

भारतीय जनजातीय समाज की विविधता को समझने के लिए जनजातीय समूहों के अध्ययन का विशेष महत्व है। भारतीय मानवशास्त्र और समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रो. के. एस. सिंह के नेतृत्व में संचालित 'People of India' परियोजना ने भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता के व्यापक अध्ययन का प्रयास किया। इस परियोजना के अंतर्गत विभिन्न जनजातीय एवं सामाजिक समूहों की पहचान और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन किया गया। गोंड, भील, संथाल, मुंडा, उरांव, मीणा, नागा, खासी, गारो, टोडा आदि अनेक जनजातीय समुदाय भारत की विविध जनजातीय संरचना को अभिव्यक्त करते हैं। प्रत्येक समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा, सामाजिक संस्थाएँ, धार्मिक मान्यताएँ, लोक परंपराएँ, कला, रीति-रिवाज और जीवन-पद्धति रही है।

'Tribe' शब्द की व्युत्पत्ति भी इस अवधारणा के ऐतिहासिक विकास को समझने में उपयोगी है। अंग्रेजी का 'Tribe' शब्द लैटिन भाषा के 'Tribes' से संबंधित माना जाता है। प्राचीन रोम में इसका प्रयोग सामाजिक या राजनीतिक समूहों के संदर्भ में किया जाता था। समय के साथ यूरोपीय औपनिवेशिक लेखन में 'Tribe' शब्द का प्रयोग उन समुदायों के लिए होने लगा, जिन्हें मुख्यधारा के राज्य और समाज से अलग अथवा अपेक्षाकृत पिछड़ा माना जाता था। आधुनिक मानवशास्त्रीय विमर्श में इस शब्द के प्रयोग और इसकी औपनिवेशिक विरासत पर भी चर्चा की जाती है। वर्तमान समय में 'Indigenous Peoples' अर्थात् 'स्वदेशी/देशज जन' जैसी अवधारणाएँ भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित हैं। भारत के संदर्भ में 'जनजाति' शब्द का एक महत्वपूर्ण संवैधानिक अर्थ है, क्योंकि भारतीय संविधान में 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में उन समुदायों को मान्यता दी

गई है जिन्हें निर्धारित संवैधानिक प्रक्रिया के अंतर्गत सूचीबद्ध किया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि प्राचीन भारतीय भाषाओं और ग्रंथों में आधुनिक अर्थ में 'जनजाति' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में विभिन्न समुदायों की पहचान उनके विशिष्ट नामों, क्षेत्रों, राजनीतिक संगठनों अथवा सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर होती थी। उदाहरण के लिए गोंड, भील, संथाल, मुंडा आदि समुदाय अपने विशिष्ट नामों से जाने जाते रहे हैं। इसलिए आधुनिक 'जनजाति' की अवधारणा को सीधे प्राचीन सामाजिक संरचना पर आरोपित करने के बजाय उसके ऐतिहासिक विकास को समझना अधिक उपयुक्त है।

'अनुसूचित जनजाति' की अवधारणा का विकास मुख्यतः औपनिवेशिक प्रशासन और बाद में भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के संदर्भ में हुआ। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में जनसंख्या की प्रशासनिक एवं सामाजिक श्रेणीकरण की प्रक्रिया को संस्थागत रूप दिया गया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान जनगणना, प्रशासनिक रिपोर्टें तथा विभिन्न कानूनों के माध्यम से जनजातीय और अन्य समुदायों की अलग-अलग श्रेणियाँ निर्मित की गईं। 1874 के Scheduled Districts Act के माध्यम से कुछ विशेष क्षेत्रों के लिए अलग प्रशासनिक व्यवस्था विकसित की गई। इसका उद्देश्य सामान्य प्रशासनिक कानूनों से अलग कुछ क्षेत्रों के प्रशासन को नियंत्रित करना था। आगे चलकर औपनिवेशिक शासन ने जनजातीय और अन्य विशिष्ट समुदायों के लिए अलग प्रशासनिक व्यवस्थाओं को अधिक व्यवस्थित रूप दिया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन को लेकर ब्रिटिश सरकार की नीतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। भारत शासन अधिनियम, 1919 के बाद कुछ क्षेत्रों को विशेष प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत रखने की प्रक्रिया विकसित हुई। इसके बाद भारत शासन अधिनियम, 1935 में 'Excluded Areas' और 'Partially Excluded Areas' जैसी प्रशासनिक श्रेणियाँ निर्धारित की गईं। इन व्यवस्थाओं के माध्यम से कुछ जनजातीय क्षेत्रों को सामान्य प्रांतीय प्रशासन से अलग अथवा विशेष प्रशासनिक नियंत्रण के अंतर्गत रखा गया। हालांकि, इन नीतियों का उद्देश्य मुख्यतः औपनिवेशिक प्रशासनिक नियंत्रण और शासन-

व्यवस्था को व्यवस्थित करना था, इसलिए इनके सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों को समझना आवश्यक है।

औपनिवेशिक काल की जनगणनाओं ने भी जनजातीय पहचान के निर्माण और वर्गीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1921 से 1941 के बीच विभिन्न जनगणनाओं में जनजातीय समुदायों की पहचान और वर्गीकरण के लिए अलग-अलग शब्दावलियों और मानदंडों का प्रयोग किया गया। कुछ समुदायों को 'Animist' अर्थात् जीववादी धार्मिक मान्यताओं वाले समूहों के रूप में वर्गीकृत किया गया, जबकि अन्य को उनके निवास-क्षेत्र, सामाजिक प्रथाओं अथवा प्रशासनिक श्रेणियों के आधार पर पहचाना गया। इस प्रकार औपनिवेशिक जनगणना केवल जनसंख्या की गणना का साधन नहीं रही, बल्कि उसने सामाजिक समूहों को विशिष्ट प्रशासनिक और सांख्यिकीय श्रेणियों में विभाजित करने में भी भूमिका निभाई।

औपनिवेशिक शासन द्वारा निर्मित इन श्रेणियों का भारतीय समाज पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ा। 'जनजाति', 'आदिम जाति' तथा अन्य प्रशासनिक शब्दावलियाँ उस समय की औपनिवेशिक दृष्टि और वर्गीकरण प्रणाली से जुड़ी थीं। इसलिए जनजातीय इतिहास का अध्ययन करते समय केवल प्रशासनिक दस्तावेजों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। जनजातीय समुदायों की मौखिक परंपराओं, लोककथाओं, स्मृतियों, सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को भी समान महत्व देना आवश्यक है।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने जनजातीय समुदायों के अधिकारों और संरक्षण के लिए एक नई संवैधानिक व्यवस्था स्थापित की। 'अनुसूचित जनजाति' की संवैधानिक श्रेणी का उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से वंचित और विशिष्ट सामाजिक समूहों को विशेष संरक्षण तथा अवसर उपलब्ध कराना था। संविधान के विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक हितों की रक्षा तथा उनके विकास के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की गईं। पाँचवीं और छठी अनुसूची के माध्यम से कुछ जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए विशेष प्रावधान किए गए। इस प्रकार औपनिवेशिक काल की प्रशासनिक श्रेणियों से विकसित अवधारणाओं को स्वतंत्र भारत ने एक नए संवैधानिक और कल्याणकारी संदर्भ में पुनर्गठित किया।

अतः भारत में जनजातीय समाज को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास, सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक विशिष्टता तथा औपनिवेशिक एवं संवैधानिक वर्गीकरण—इन सभी पक्षों का समग्र अध्ययन आवश्यक है। जनजातीय समाज न तो भारतीय समाज से पूर्णतः पृथक् रहा है और न ही उसकी विशिष्ट पहचान को व्यापक समाज में पूरी तरह विलीन किया जा सकता है। विभिन्न जनजातीय समुदायों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा अपनी विशिष्ट परंपराओं, ज्ञान-प्रणालियों और सामुदायिक संस्थाओं को संरक्षित रखा है। इसलिए जनजातीय समाज का अध्ययन केवल 'पिछड़े' या 'अलग' समुदायों के अध्ययन के रूप में नहीं, बल्कि भारत की बहुलतावादी सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विविधता और ऐतिहासिक विकास को समझने के एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में किया जाना चाहिए। अध्ययन पद्धति -प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

## उद्देश्य –

- 1 :-प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इसकी उपयोगिता जनजातीय समाज के लिए सिद्ध करना !
- 2 :-जनजातीय समाज के विकास एवं इतिहास को प्रस्तुत करना !
- 3 :-जनजातीय नीतिओ को प्रस्तुत करना !
- 4 :-जनजातियो के लिए संबैधानिक उपायों को बताना !

## जनजाति का अर्थ

'जनजाति' शब्द का प्रयोग विभिन्न समाजों और ऐतिहासिक संदर्भों में अलग-अलग अर्थों में किया गया है। भारत में जनजातीय समुदायों के लिए 'वनवासी', 'आदिवासी', 'जनजाति' आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। विभिन्न क्षेत्रों और विद्वानों द्वारा इन समुदायों को उनकी सामाजिक संरचना, भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक परंपराओं तथा जीवन-पद्धति के आधार पर अलग-अलग रूपों में समझने का प्रयास किया गया है। इसलिए 'जनजाति' की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित करना सरल नहीं है।

## इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया की परिभाषा

Imperial Gazetteer of India में जनजाति को ऐसे परिवारों अथवा समूहों के संकलन के रूप में समझाया गया है, जो एक समान नाम धारण करते हैं, समान बोली बोलते हैं तथा किसी निश्चित भू-भाग से संबंधित होते हैं। इस प्रकार की परिभाषा में समान नाम, भाषा, भू-क्षेत्र और सामाजिक एकता को जनजातीय समूह की प्रमुख विशेषताओं के रूप में देखा गया है। यह परिभाषा औपनिवेशिक काल के प्रशासनिक एवं मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती है।

## जी. एस. घुरिये का दृष्टिकोण

जी. एस. घुरिये ने अपनी पुस्तक The Scheduled Tribes (1959) में भारतीय जनजातियों और हिंदू सामाजिक व्यवस्था के संबंधों पर विचार किया। उनके दृष्टिकोण में अनेक जनजातीय समुदायों को व्यापक हिंदू सामाजिक व्यवस्था से ऐतिहासिक रूप से जुड़े हुए समूहों के रूप में देखा गया। घुरिये के अनुसार अनेक जनजातीय समूह सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया में हिंदू समाज के साथ जुड़ते गए हैं। इस दृष्टिकोण में जनजातीय समुदायों के क्रमिक सामाजिक एकीकरण पर विशेष बल दिया गया है।

## वेरियर एल्विन का दृष्टिकोण

वेरियर एल्विन ने जनजातीय समाजों की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और उनके स्वतंत्र सामाजिक जीवन को विशेष महत्व दिया। उन्होंने जनजातीय समुदायों की प्रकृति, संस्कृति, परंपराओं और जीवन-पद्धति के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। उनके अध्ययन में जनजातीय समुदायों के प्रकृति के साथ संबंध तथा उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक संस्थाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस प्रकार एल्विन का दृष्टिकोण जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक विशिष्टता को रेखांकित करता है।

## निर्मल कुमार बोस का दृष्टिकोण

निर्मल कुमार बोस ने अपनी पुस्तक The Structure of Hindu Society में जनजातीय समुदायों और हिंदू सामाजिक व्यवस्था के बीच संपर्क तथा एकीकरण की प्रक्रिया पर चर्चा की। उनके अनुसार भारतीय समाज में जनजातीय समुदायों और व्यापक सामाजिक व्यवस्था के बीच

लंबे समय से संपर्क रहा है और परिवर्तन की प्रक्रिया में अनेक जनजातीय समूह व्यापक सामाजिक संरचना के साथ जुड़ते गए।

इस प्रकार घुरिये, वेरियर एल्विन और निर्मल कुमार बोस के विचारों में दृष्टिकोणगत अंतर दिखाई देता है। घुरिये ने जनजातीय समुदायों के सामाजिक एकीकरण पर बल दिया, एल्विन ने उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता और स्वतंत्रता को महत्व दिया, जबकि बोस ने दोनों के बीच संपर्क तथा क्रमिक एकीकरण की प्रक्रिया को रेखांकित किया।

## संवैधानिक दृष्टि से जनजाति

भारतीय संविधान में 'जनजाति' की कोई सामान्य समाजशास्त्रीय परिभाषा नहीं दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 342 में 'अनुसूचित जनजातियों' की संवैधानिक पहचान और सूची से संबंधित प्रावधान किया गया है। इसके अंतर्गत राष्ट्रपति, किसी राज्य या केंद्रशासित प्रदेश के संदर्भ में उन जनजातियों अथवा जनजातीय समुदायों को अनुसूचित जनजाति के रूप में निर्दिष्ट कर सकते हैं। संसद को इन सूचियों में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है।

अतः 'जनजाति' एक व्यापक सामाजिक एवं मानवशास्त्रीय अवधारणा है, जबकि 'अनुसूचित जनजाति' एक संवैधानिक एवं कानूनी श्रेणी है। दोनों को एक-दूसरे का पूर्ण पर्याय नहीं माना जाना चाहिए।

## जनजातीय समाज की प्रमुख विशेषताएँ

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने जनजातीय समाज की अलग-अलग विशेषताओं का उल्लेख किया है। पारंपरिक भारतीय समाजशास्त्रीय साहित्य में डी. एन. मजूमदार द्वारा जनजातीय समाज की निम्नलिखित विशेषताओं पर बल दिया गया है—

जनसंख्या का अपेक्षाकृत छोटा आकार तथा सामुदायिक एकता।

संगठित नातेदारी व्यवस्था।

एक निश्चित भू-भाग में निवास।

समान अथवा निकटवर्ती भाषा और सांस्कृतिक परंपराएँ।

सामुदायिक या सामूहिक संसाधनों की परंपरा।

परंपरागत उत्पादन प्रणाली।

विशिष्ट धार्मिक एवं सांस्कृतिक विश्वास।

परंपराओं और सामाजिक रूढ़ियों का महत्वपूर्ण स्थान।

हालाँकि, वर्तमान समय में इन विशेषताओं को सभी जनजातीय समुदायों पर समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता। शिक्षा, नगरीकरण, औद्योगीकरण, बाजार अर्थव्यवस्था, आधुनिक तकनीक तथा राजनीतिक जागरूकता के कारण जनजातीय समाजों में व्यापक परिवर्तन हुए हैं।

## एस. सी. दुबे के अनुसार जनजातीय समाज

एस. सी. दुबे ने जनजातीय समाज को समझने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विशेषताओं को महत्वपूर्ण माना। उनके विचारों के आधार पर जनजातीय समुदायों की पहचान में निम्नलिखित तत्वों को रेखांकित किया जा सकता है—

भाषा एवं सामाजिक प्रथाओं की विशिष्टता।

आर्थिक एवं तकनीकी विकास का अपेक्षाकृत निम्न स्तर, विशेषकर पारंपरिक समाजों के संदर्भ में।

भौगोलिक अथवा सामाजिक पृथक्ता का अनुभव।

मिथकों, लोककथाओं, मौखिक परंपराओं और सामुदायिक स्मृतियों का महत्व।

ये विशेषताएँ स्थिर नहीं हैं। आधुनिक परिस्थितियों में जनजातीय समाज भी परिवर्तनशील है और शिक्षा, तकनीक, बाजार तथा राजनीतिक संस्थाओं के साथ उसका निरंतर संपर्क बढ़ रहा है।

## भारत में जनजातियों का क्षेत्रीय वर्गीकरण

भारत में जनजातीय समुदायों को उनके भौगोलिक वितरण के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित करके समझा गया है। पारंपरिक मानवशास्त्रीय साहित्य में इन्हें व्यापक रूप से निम्नलिखित तीन मंडलों में वर्गीकृत किया गया है—

### 1. उत्तरी एवं पूर्वोत्तर मंडल

इस क्षेत्र में मुख्यतः हिमालय तथा उत्तर-पूर्वी भारत के अनेक जनजातीय समुदाय आते हैं। इनमें खासी, गारो, कूकी, लुशाई, अपातानी,

लेपचा आदि प्रमुख हैं। इन समुदायों की भाषा, सामाजिक संगठन, धार्मिक विश्वास तथा सांस्कृतिक परंपराओं में पर्याप्त विविधता पाई जाती है।

### 2. केंद्रीय अथवा मध्य मंडल

मध्य भारत जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में गोंड, मुंडा, संथाल, हो, उरांव, खरिया, भुइयाँ, बिरहोर आदि प्रमुख जनजातीय समुदाय पाए जाते हैं। इस क्षेत्र की जनजातीय संस्कृति में कृषि, वन-संसाधन, सामुदायिक जीवन, लोककला, नृत्य, संगीत तथा मौखिक परंपराओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

### 3. दक्षिणी एवं द्वीपीय मंडल

दक्षिणी तथा द्वीपीय क्षेत्रों में अनेक विशिष्ट जनजातीय समुदाय पाए जाते हैं। अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह में जारवा, ओंगे, ग्रेट अंडमानी, सेंटिनलीज तथा निकोबारी जैसे समुदायों का उल्लेख किया जाता है। इन समुदायों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ विशिष्ट हैं और इनके संरक्षण तथा अधिकारों से जुड़े प्रश्न विशेष महत्व रखते हैं।

## वी. एस. गुहा का मानवशास्त्रीय वर्गीकरण

भारतीय जनजातीय समाज के अध्ययन में पुराने मानवशास्त्रीय साहित्य में जनसंख्या का वर्गीकरण तथाकथित शारीरिक अथवा 'प्रजातीय' विशेषताओं के आधार पर भी किया गया। वी. एस. गुहा ने अपने समय में प्रचलित मानवशास्त्रीय पद्धतियों के आधार पर भारतीय जनसंख्या के विभिन्न समूहों का वर्गीकरण किया था। इनमें प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड, मंगोलॉयड तथा निग्रिटो जैसी श्रेणियों का उल्लेख मिलता है।

### 1. प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड

पुराने मानवशास्त्रीय वर्गीकरण में इस श्रेणी का संबंध मुख्यतः मध्य भारत की कुछ जनजातीय आबादी से जोड़ा गया था। शारीरिक विशेषताओं के आधार पर त्वचा का रंग, नाक की आकृति, बालों की बनावट तथा कद आदि को वर्गीकरण का आधार बनाया गया।

### 2. मंगोलॉयड

इस श्रेणी में मुख्यतः उत्तर-पूर्वी भारत तथा हिमालयी क्षेत्र की कुछ जनसंख्या को रखा गया। इसमें भी शारीरिक विशेषताओं, जैसे आँखों की बनावट, बालों की प्रकृति, नाक की आकृति आदि को आधार माना गया।

### 3. निग्रिटो

पुराने मानवशास्त्रीय साहित्य में 'निग्रिटो' तत्वों की चर्चा विशेष रूप से अंडमान द्वीपसमूह के कुछ समुदायों के संदर्भ में की गई है।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपर्युक्त 'प्रजातीय' वर्गीकरण ऐतिहासिक मानवशास्त्रीय वर्गीकरण हैं। आधुनिक मानवशास्त्र और आनुवंशिक विज्ञान मानव आबादी को इस प्रकार कठोर एवं पृथक् प्रजातीय श्रेणियों में बाँटने की पद्धति को सीमित मानते हैं। इसलिए इन वर्गीकरणों का उल्लेख करते समय इन्हें उनके ऐतिहासिक संदर्भ में ही समझना उचित है।

## भारत में अनुसूचित जनजाति

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने जनजातीय समुदायों के संरक्षण और विकास के लिए विशेष संवैधानिक व्यवस्था की। संविधान लागू होने के साथ विभिन्न राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के संदर्भ में अनुसूचित जनजातियों की सूचियाँ निर्धारित की गईं। प्रारंभिक सूचीकरण के बाद समय-समय पर विभिन्न संवैधानिक एवं कानूनी प्रक्रियाओं के माध्यम से इन सूचियों में संशोधन किए गए।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि किसी समुदाय का अनुसूचित जनजाति के रूप में दर्ज होना केवल उसके सामाजिक रूप से जनजातीय होने पर निर्भर नहीं करता, बल्कि इसके लिए संवैधानिक एवं विधिक प्रक्रिया निर्धारित है। वर्तमान में जिन समुदायों को संबंधित राज्य या केंद्रशासित प्रदेश की आधिकारिक अनुसूचित जनजाति सूची में शामिल किया गया है, वे संवैधानिक अर्थ में अनुसूचित जनजाति माने जाते हैं।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने जनजातीय समुदायों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों तथा उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को ध्यान में रखते हुए उनके लिए अनेक विशेष प्रावधान किए। शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, प्रशासन, सामाजिक-आर्थिक विकास तथा अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित विशेष व्यवस्थाएँ संविधान में की गई हैं।

## संवैधानिक संरक्षण

अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में अनेक महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। अनुच्छेद 342 अनुसूचित जनजातियों की सूची से संबंधित है। पाँचवीं अनुसूची अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन

एवं नियंत्रण से संबंधित विशेष प्रावधान करती है। वहीं छठी अनुसूची असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के कुछ जनजातीय क्षेत्रों में स्वायत्त जिला एवं क्षेत्रीय परिषदों की व्यवस्था करती है।

मूल संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संबंध में विशेष अधिकारी/आयुक्त की व्यवस्था की गई थी। बाद में संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से इस व्यवस्था में परिवर्तन किया गया। वर्तमान में अनुच्छेद 338A के अंतर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग को संवैधानिक दर्जा प्राप्त है। आयोग का उद्देश्य अनुसूचित जनजातियों के संवैधानिक एवं कानूनी संरक्षण से संबंधित मामलों की निगरानी करना तथा उनके हितों से जुड़े विषयों पर कार्य करना है।

## जनजातियों की प्रमुख समस्याएँ

भारत का जनजातीय समाज देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता का महत्वपूर्ण अंग है। जनजातीय समुदायों का जीवन ऐतिहासिक रूप से प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर वन, भूमि और जल पर काफी हद तक निर्भर रहा है। अनेक जनजातीय समुदाय दुर्गम एवं वनवर्ती क्षेत्रों में निवास करते आए हैं। भौगोलिक दूरी, सीमित संसाधन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी तथा आर्थिक अवसरों के अभाव के कारण इन समुदायों को लंबे समय तक अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। आधुनिक विकास प्रक्रिया के साथ जनजातीय समाज भी व्यापक सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन से गुजर रहा है। एक ओर शिक्षा, संचार, लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा विकास योजनाओं के माध्यम से जनजातीय समुदायों की मुख्यधारा के साथ भागीदारी बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर भूमि, वन, रोजगार, संस्कृति और पहचान से संबंधित नई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। जनजातीय समुदायों की समस्याओं को मुख्यतः आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य संबंधी तथा अलगाव/पृथक्करण से संबंधित समस्याओं के रूप में समझा जा सकता है।

## 1. आर्थिक समस्याएँ

जनजातीय समाज की प्रमुख समस्याओं में आर्थिक समस्या का विशेष महत्व है। पारंपरिक रूप से अनेक जनजातीय समुदाय कृषि, वनोपज संग्रह, शिकार, पशुपालन, हस्तशिल्प तथा स्थानीय संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था से जुड़े रहे हैं। आधुनिक आर्थिक व्यवस्था और प्राकृतिक

संसाधनों पर बढ़ते नियंत्रण के कारण उनकी पारंपरिक आजीविका में परिवर्तन आया है।

## (क) स्थानांतरित कृषि की समस्या

कुछ जनजातीय समुदायों में पारंपरिक रूप से स्थानांतरित या झूम कृषि की पद्धति प्रचलित रही है। जनसंख्या वृद्धि, वन संरक्षण संबंधी नियमों, भूमि पर बढ़ते दबाव तथा पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण इस कृषि पद्धति के सामने अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। इससे पारंपरिक आजीविका और खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो सकती है।

## (ख) बेगार एवं श्रम-शोषण की समस्या

ऐतिहासिक रूप से अनेक जनजातीय क्षेत्रों में श्रम-शोषण और बेगार जैसी प्रथाओं के उदाहरण मिलते हैं। आर्थिक निर्भरता, अशिक्षा और रोजगार के सीमित अवसरों के कारण श्रमिकों का शोषण होने की संभावना बढ़ जाती है। आधुनिक कानूनों के बावजूद असंगठित क्षेत्र में श्रम संबंधी समस्याएँ बनी हुई हैं।

## (ग) वन संबंधी कानूनों से उत्पन्न समस्याएँ

जनजातीय समुदायों का जीवन वन संसाधनों से गहराई से जुड़ा रहा है। ईंधन, चारा, फल, कंद-मूल, औषधीय पौधे तथा अन्य लघु वनोपज उनकी आजीविका का महत्वपूर्ण आधार रहे हैं। वन संरक्षण तथा प्रशासन से संबंधित कानूनों और नीतियों के कारण कई क्षेत्रों में पारंपरिक वन उपयोग के अधिकारों पर प्रभाव पड़ा। बाद में वन अधिकारों को मान्यता देने के लिए कानूनी प्रयास किए गए, लेकिन उनके क्रियान्वयन से संबंधित चुनौतियाँ भी सामने आईं।

## (घ) बेरोजगारी एवं अल्परोजगार

जनजातीय क्षेत्रों में पर्याप्त रोजगार के अवसरों का अभाव एक महत्वपूर्ण समस्या है। कृषि पर निर्भरता, सीमित औद्योगिक विकास तथा कौशल-प्रशिक्षण के अवसरों की कमी के कारण बेरोजगारी और अल्परोजगार की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप अनेक लोग मौसमी या अस्थायी रोजगार के लिए दूसरे क्षेत्रों में प्रवास करते हैं।

## (ङ) ऋणग्रस्तता एवं बंधुआ मजदूरी

आर्थिक संसाधनों की कमी, आकस्मिक खर्च, स्वास्थ्य संबंधी व्यय तथा कृषि आवश्यकताओं के लिए ऋण लेने की आवश्यकता कई बार जनजातीय परिवारों को साहूकारों और अनौपचारिक ऋणदाताओं पर

निर्भर करती है। अत्यधिक ब्याज तथा ऋण चुकाने में असमर्थता के कारण ऋणग्रस्तता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐतिहासिक रूप से कुछ क्षेत्रों में ऋण के बदले श्रम कराने जैसी बंधुआ मजदूरी की प्रथाएँ भी देखी गई हैं।

## (च) श्रम विभाजन एवं कौशल की समस्या

आधुनिक अर्थव्यवस्था में पारंपरिक जनजातीय कौशल और रोजगार के बीच संबंध कमजोर हुआ है। हस्तशिल्प, लघु वनोपज, पारंपरिक कृषि और अन्य स्थानीय कौशलों को उचित बाजार न मिलने से आय के अवसर सीमित हो सकते हैं।

## 2. सामाजिक समस्याएँ

जनजातीय समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ अनेक पारंपरिक संस्थाओं और सामाजिक संबंधों में परिवर्तन आया है। इसके परिणामस्वरूप कुछ समुदायों के सामने नई सामाजिक समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं।

## (क) सामाजिक भेदभाव

जनजातीय समुदायों को कई क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ा है। यद्यपि सभी जनजातीय समुदायों की स्थिति समान नहीं है, फिर भी सामाजिक वंचना और असमानता उनके विकास के सामने महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है।

## (ख) बाल विवाह

कुछ जनजातीय समुदायों में बाल विवाह की प्रथाओं के ऐतिहासिक उदाहरण मिलते हैं। शिक्षा के विस्तार और कानूनी जागरूकता के बावजूद कुछ क्षेत्रों में कम आयु में विवाह सामाजिक समस्या के रूप में मौजूद हो सकता है। इससे बालिकाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक अवसर प्रभावित होते हैं।

## (ग) कन्या-मूल्य

कुछ जनजातीय समाजों में विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष या वर-पक्ष से संबंधित पारंपरिक आर्थिक लेन-देन की प्रथाएँ रही हैं, जिन्हें सामान्यतः 'कन्या-मूल्य' जैसी संज्ञाओं से समझाया गया है। इसे भारतीय समाज की अन्य विवाह संबंधी प्रथाओं के समान समझना उचित नहीं है, क्योंकि विभिन्न जनजातीय समुदायों में विवाह और आर्थिक लेन-देन की प्रणालियाँ अलग-अलग हैं।

## (घ) डायन-प्रथा

कुछ जनजातीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को 'डायन' या जादू-टोना करने वाली बताकर उनके साथ हिंसा या सामाजिक बहिष्कार किए जाने की घटनाएँ सामने आई हैं। यह अंधविश्वास, सामाजिक तनाव और लैंगिक भेदभाव से जुड़ी गंभीर समस्या है।

## (ङ) पारंपरिक युवा संस्थाओं का कमजोर होना

कुछ जनजातीय समाजों में पारंपरिक युवा-गृह या सामुदायिक संस्थाएँ सामाजिक शिक्षा, सांस्कृतिक प्रशिक्षण और सामुदायिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। आधुनिक शिक्षा, धार्मिक परिवर्तन, नगरीकरण और सामाजिक परिवर्तन के कारण ऐसी पारंपरिक संस्थाओं की भूमिका कई क्षेत्रों में कमजोर हुई है।

## 3. सांस्कृतिक समस्याएँ

जनजातीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में उसकी विशिष्ट भाषा, लोककला, लोकसाहित्य, परंपराएँ, नृत्य, संगीत, धार्मिक विश्वास और पारंपरिक ज्ञान शामिल हैं। आधुनिक परिवर्तन के कारण इन सांस्कृतिक तत्वों के संरक्षण के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं।

## (क) भाषा की समस्या

कई जनजातीय भाषाएँ और बोलियाँ सीमित भौगोलिक क्षेत्रों तक सीमित हैं। औपचारिक शिक्षा और प्रशासन में प्रचलित भाषाओं के बढ़ते प्रभाव के कारण कुछ जनजातीय भाषाओं के सामने अस्तित्व एवं संरक्षण की चुनौती उत्पन्न हुई है।

## (ख) पारंपरिक कौशल का विघटन

जनजातीय समुदायों के पारंपरिक हस्तशिल्प, कृषि तकनीक, औषधीय ज्ञान, लोककला तथा अन्य कौशल पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे हैं। आधुनिक बाजार व्यवस्था और नई जीवन-शैली के प्रभाव से इन कौशलों का पारंपरिक स्वरूप कमजोर हो सकता है।

## (ग) सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण की समस्या

जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक पहचान व्यापक सामाजिक परिवर्तन के साथ निरंतर बदल रही है। आधुनिक जीवन-शैली और बाहरी सांस्कृतिक प्रभावों के कारण कुछ पारंपरिक रीति-रिवाजों और संस्थाओं में

परिवर्तन हो रहा है। इसलिए विकास के साथ सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है।

## (घ) सांस्कृतिक पहचान और अस्तित्व की समस्या

जनजातीय समुदायों के लिए भूमि, जंगल, भाषा और परंपरा केवल आर्थिक संसाधन नहीं हैं, बल्कि उनकी सामुदायिक पहचान से भी जुड़े हुए हैं। इसलिए विस्थापन, प्रवास और आजीविका में परिवर्तन का प्रभाव उनकी सांस्कृतिक पहचान पर भी पड़ सकता है।

## 4. धार्मिक समस्याएँ

जनजातीय समुदायों की धार्मिक मान्यताएँ प्रकृति, पूर्वजों, स्थानीय देवी-देवताओं तथा विभिन्न सामुदायिक परंपराओं से जुड़ी रही हैं। सामाजिक परिवर्तन और विभिन्न धार्मिक प्रभावों के कारण कई समुदायों की धार्मिक परंपराओं में परिवर्तन आया है। इससे कुछ समुदायों के सामने अपनी पारंपरिक धार्मिक पहचान और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का प्रश्न उत्पन्न हुआ है।

धार्मिक परिवर्तन को केवल समस्या के रूप में देखना उचित नहीं है; यह कई बार सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ी जटिल प्रक्रिया होती है। इसलिए जनजातीय धार्मिक जीवन का अध्ययन समुदाय की अपनी मान्यताओं और अनुभवों के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

## 5. शैक्षिक समस्याएँ

जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार पिछले दशकों में बढ़ा है, फिर भी अनेक क्षेत्रों में शैक्षिक चुनौतियाँ बनी हुई हैं। दुर्गम भौगोलिक स्थिति, विद्यालयों की दूरी, गरीबी, भाषा संबंधी बाधाएँ, शिक्षकों की उपलब्धता तथा विद्यालय छोड़ने की समस्या शिक्षा के विस्तार को प्रभावित कर सकती है। विशेष रूप से प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा और स्थानीय सांस्कृतिक संदर्भों की उपेक्षा बच्चों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सकती है। इसलिए जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा की व्यवस्था करते समय स्थानीय भाषा, संस्कृति और सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

## 6. स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ

जनजातीय समुदायों के सामने स्वास्थ्य से संबंधित अनेक चुनौतियाँ हैं। दुर्गम क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्रों की कमी, चिकित्सकीय सुविधाओं तक सीमित पहुँच, गरीबी, स्वच्छ पेयजल का अभाव और पोषण संबंधी समस्याएँ स्वास्थ्य स्थिति को प्रभावित कर सकती हैं।

## प्रमुख स्वास्थ्य समस्याएँ

कुपोषण और अल्पपोषण।

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएँ।

संक्रामक रोगों का खतरा।

स्वच्छ पेयजल एवं स्वच्छता की कमी।

स्वास्थ्य सेवाओं तक भौगोलिक पहुँच का अभाव।

स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता की कमी।

कुछ क्षेत्रों में हानिकारक मादक पदार्थों के सेवन से संबंधित समस्याएँ।

इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल चिकित्सकीय सेवाओं का विस्तार पर्याप्त नहीं है। पोषण, स्वच्छता, पेयजल, शिक्षा और आजीविका को भी स्वास्थ्य नीति के साथ जोड़ना आवश्यक है।

## 7. अलगाव या पृथक्करण की समस्या

भारतीय जनजातीय समुदायों के सामाजिक विकास को समझने में पृथक्करण की समस्या का विशेष महत्व है। अनेक जनजातीय समुदाय ऐतिहासिक रूप से दुर्गम पर्वतीय, वनवर्ती और सीमावर्ती क्षेत्रों में निवास करते रहे हैं। भौगोलिक दूरी के कारण लंबे समय तक शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार और प्रशासनिक सुविधाओं तक उनकी पहुँच सीमित रही। ब्रिटिश शासन के दौरान जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए विशेष व्यवस्थाएँ विकसित की गईं। कुछ क्षेत्रों को सामान्य प्रशासन से अलग अथवा विशेष प्रशासनिक नियंत्रण के अंतर्गत रखा गया। औपनिवेशिक शासन की इन व्यवस्थाओं के पीछे प्रशासनिक नियंत्रण सहित विभिन्न उद्देश्य थे और इनके सामाजिक प्रभाव भी महत्वपूर्ण रहे।

स्वतंत्रता के बाद यह प्रश्न सामने आया कि जनजातीय समुदायों के विकास के लिए उन्हें व्यापक भारतीय समाज से किस प्रकार जोड़ा जाए, जबकि उनकी विशिष्ट संस्कृति और सामाजिक संस्थाओं का भी संरक्षण

किया जाए। इसी संदर्भ में जनजातीय नीति को लेकर विभिन्न विद्वानों और प्रशासकों के बीच अलग-अलग विचार सामने आए।

## अलगाववादी दृष्टिकोण

वेरियर एल्विन ने अपने प्रारंभिक लेखन में जनजातीय समुदायों की विशिष्ट संस्कृति को बाहरी हस्तक्षेप से बचाने तथा उनके सामाजिक जीवन को सुरक्षित रखने की आवश्यकता पर बल दिया। उनके विचारों को सामान्यतः जनजातीय क्षेत्रों में सीमित हस्तक्षेप अथवा सांस्कृतिक संरक्षण के दृष्टिकोण से जोड़ा जाता है। बाद के वर्षों में उनके विचारों में भी परिवर्तन और विकास दिखाई देता है।

दूसरी ओर, ए. वी. ठक्कर जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं ने जनजातीय समुदायों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान, शोषण की समाप्ति तथा शिक्षा और विकास के विस्तार पर बल दिया। इस दृष्टिकोण में जनजातीय समुदायों को अलग-थलग रखने के बजाय उनके अधिकारों और विशिष्ट पहचान का सम्मान करते हुए व्यापक विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया गया।

स्वतंत्र भारत में अंततः जनजातीय नीति ने केवल अलगाव या पूर्ण समावेशन में से किसी एक को अपनाने के बजाय विकास, संरक्षण, अधिकार और भागीदारी के बीच संतुलन स्थापित करने की दिशा में विकास किया। जवाहरलाल नेहरू के 'Tribal Panchsheel' में भी जनजातीय संस्कृति और जीवन-पद्धति के सम्मान, प्रशासनिक हस्तक्षेप में संयम तथा विकास में उनकी भागीदारी जैसे सिद्धांतों पर बल दिया गया।

## 8. जनजातीय समस्याओं का व्यापक स्वरूप

जनजातीय समस्याएँ एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। आर्थिक समस्या का प्रभाव शिक्षा और स्वास्थ्य पर पड़ सकता है, भूमि एवं वन से संबंधित समस्याएँ आजीविका और संस्कृति को प्रभावित कर सकती हैं तथा विस्थापन का प्रभाव सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान पर पड़ सकता है। इसी प्रकार शिक्षा की कमी रोजगार के अवसरों को सीमित कर सकती है और रोजगार के सीमित अवसर आर्थिक निर्भरता को बढ़ा सकते हैं।

इसलिए जनजातीय विकास को केवल आर्थिक विकास के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसके अंतर्गत भूमि और वन अधिकार, आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, भाषा, संस्कृति, स्वशासन, सामाजिक न्याय और राजनीतिक भागीदारी जैसे सभी पक्षों को शामिल करना आवश्यक है।

## जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रावधान

आदिम जातियों के कल्याण एवं विकास के लिए भारत के संविधान में विशेष प्रावधान किया गया है। इन्हें संरक्षण मूलक प्रावधान भी कहा जाता है। प्रमुख प्रावधान निम्न हैं—

1. संविधान के तीसरे भाग के अनुच्छेद 15 में नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार किसी भी नागरिक के साथ धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। इस प्रावधान के कारण भारतीय जनजातियों को वही सारे अधिकार प्राप्त हैं, जो भारतीय हर नागरिक को प्राप्त हैं।
2. अनुच्छेद 16 में राज्य के पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में समान अवसर का प्रावधान है। उन क्षेत्रों में, जहाँ उनका प्रतिनिधित्व अपर्याप्त है, अनुसूचित जनजातियों का ध्यान रखा जायेगा।
3. अनुच्छेद 17 — अस्पृश्यता का उन्मूलन। आदिम जनजातियों को हिन्दू वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत नहीं रखा जाता है, परन्तु फिर भी कुछ क्षेत्रों में इन्हें अस्पृश्य माना जाता था।
4. अनुच्छेद 19 में अनुसूचित जनजातियों के लिए सम्भाषण, अभिभाषण, अभिव्यक्ति, नागरिकों को स्वतंत्रतापूर्वक आने का अधिकार, सम्पत्ति का अर्जन आदि का प्रावधान है। इस प्रावधान से इनमें गतिशीलता आयी है।
5. अनुच्छेद 23 में अनाचार एवं बेगार को गैरकानूनी बताया गया है। इस प्रकार की समस्या जनजातियों में बहुत थी।
6. अनुच्छेद 25 में जनजातियों को धर्म सम्बन्धी स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है।
7. अनुच्छेद 46 में राज्य के कमजोर तबकों के लोगों को, विशेषकर अनुसूचित जातियों/जनजातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा देना तथा हर प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना सुनिश्चित किया गया है।

8. अनुच्छेद 51 में जनजातियों को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालय, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों में प्रवेश तथा सामान्य जन के उपयोग के लिए निर्मित कुओं, तालाबों के उपयोग की स्वतंत्रता है।

9. अनुच्छेद 330, 332, 334 में अनुसूचित जातियों/जनजातियों को लोकसभा एवं राज्य की विधानसभा में विशेष प्रतिनिधित्व का प्रावधान है।

10. अनुच्छेद 244 और पंचम तथा छठी अनुसूची में जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासन और नियंत्रण का विशेष उपबन्ध है।

11. अनुच्छेद 339 में यह व्यवस्था की गयी है कि संविधान लागू होने के दस वर्ष बाद अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के विशेष प्रशासन की रिपोर्ट राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत की जाएगी।

12. अनुच्छेद 341, 342 में राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह राज्यों के राज्यपालों से विमर्श कर प्रत्येक राज्य के जनजातीय समुदायों में अनुसूचित जनजाति की अलग से व्यवस्था करे।

13. अनुच्छेद 325 में केंद्र सरकार जनजातीय कल्याण के लिए धनराशि प्रदान करना। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन से पंचायत एवं स्थानीय निकाय में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था दी गयी है।

14. शासकीय सेवाओं में 7.5% स्थान सुरक्षित है, साथ ही उन्हें अनेक प्रकार की छूट दी गयी है।

## जनजातीय नीति

जनजातीय नीति से जुड़ी तीन विचारधाराएँ हैं, जो निम्न हैं—

### 1. पृथक्करण की नीति

ब्रिटिश काल में जनजातियों के साथ एक विशेष व्यवहार किया जाता था। प्रो. योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक Indian Sociology में ब्रिटिश सरकार की नीति का खुलासा किया और लिखा है कि—

“वे लोग आदिवासियों को सामान्य भारतीय जनता से अलग समझते थे। इनकी धारणा थी कि आदिवासी समूह भारत के सावयवी समाज से पृथक् रहते थे और इन्हें देश की सामाजिक और सांस्कृतिक मुख्य धारा से अलग रखा गया।”

वेरियर एल्विन ने Loss of Nerve में बताया कि—

“जनजातियों की संस्थाओं और जीवन-पद्धति में जब परिवर्तन आता है, तो इससे यह समूह दुखी हो जाता है।”

एल्विन ने 1939 में राष्ट्रीय उपवन की स्थापना का प्रस्ताव रखा। उनके अनुसार—

“एक ऐसा क्षेत्र बनाया जाये, जिसमें केवल निकटवर्ती जनजातियाँ ही निवास करें और अन्य लोगों का प्रवेश वर्जित किया जाये।”

घुरिये ने अपनी पुस्तक *The Aborigines — So-called and Their Future* (1943) में बताया है कि—

“आदिवासी भारतीय समाज से अलग नहीं है, वे तो इस पुरातन समाज के अंग हैं और आदिवासियों तथा जनजातियों का पारस्परिक सम्पर्क ऐतिहासिक है। इसे अलग करके देखा ही नहीं जा सकता है।”

इनके अनुसार—

“मुख्य धारा धर्मनिरपेक्ष नहीं है, यह मुख्य धारा हिन्दुओं की है, मतलब हुआ जनजातियों का एकीकरण हिन्दू जातियों में हुआ है।”

## 2. एकीकरण

आदिवासियों की एकीकरण की नीति को भारत सरकार ने अपनी आदिवासी नीति के रूप में रखा—

“देश के अन्य समूहों की तरह ही जनजातियों को भारतीय संविधान के ढाँचे में आना है। हमारा राष्ट्रीय समाज प्रजातान्त्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी समाज का परिचायक है।”

एकीकरण का सामान्य अर्थ यह है कि—

“आदिवासियों को जहाँ तक उनकी संस्कृति और एथनिसिटी है, जीवन-पद्धति अपनाने की स्वतंत्रता है। वे अपने त्यौहार, शादी-विवाह, मेले-ठेले में नाचे-गाएँ, राज्य का कोई सरोकार नहीं है। यह उनका स्थानिक क्षेत्र है, लेकिन देश की अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि में जनजातियों का एकीकरण करना ही होगा।”

इस प्रकार एकीकरण की नीति में जनजातीय समुदायों की विशिष्ट संस्कृति और जीवन-पद्धति को बनाए रखते हुए उन्हें देश की व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था से जोड़ने पर बल दिया जाता है।

## 3. सात्मीकरण

सात्मीकरण एक प्रक्रिया है। एकीकरण में समूह अपनी पहचान और स्वायत्तता को बनाए रखता है, जबकि सात्मीकरण की अवस्था में पहुँचकर समूह अपनी पहचान/अस्तित्व को खो देता है।

अर्थात् एकीकरण की प्रक्रिया में जनजातीय समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए व्यापक समाज का हिस्सा बनते हैं, जबकि सात्मीकरण की स्थिति में उनकी विशिष्ट पहचान धीरे-धीरे व्यापक समाज में विलीन हो जाती है।

## जनजातीय कल्याण योजनाएँ

इस व्यवस्था के अंतर्गत योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है। साथ ही विभाग से अनुसूचित जाति/जनजाति के सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास एवं कल्याण के लिए चलाई जा रही योजनाओं का कार्यान्वयन किया जाता है, जिसकी देख-रेख समिति समय-समय पर मुख्यालय स्तर के पदाधिकारियों के साथ किया जाता है।

**1. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/जनजाति हब** — इसकी शुरुआत 18 अक्टूबर 2016 को की गयी, जो लघु एवं उद्यम मंत्रालय से संचालित होता है।

**2. आदिम जनजातीय समूह (पी.टी.जी.) के विकास योजना** — 1998-1999 में प्रारंभ की गयी। इसमें आवास, बुनियादी ढाँचे का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि वितरण एवं कृषि विकास सम्मिलित है।

**3. जनजातीय अनुसंधान संस्थान** — भारत में लगभग 14 जनजातीय अनुसंधान केंद्र स्थापित हैं, जिनका काम अनुसंधान संबंधी कार्य, मूल्यांकन, आँकड़ों का संग्रह, प्रथागत कानून एवं प्रशिक्षण आदि है।

**4. अनुसूचित जनजाति के लड़कों एवं लड़कियों के लिए छात्रावास** — 1989-1990 में छात्रावास की व्यवस्था की गयी है।

**5. आश्रम विद्यालय** — टी.एस.पी. क्षेत्र में आश्रम विद्यालयों की स्थापना की गयी है।

**6. व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र** — जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना की गयी है।

**7. कम साक्षरता वाले जिलों में अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों के बीच शिक्षा को मजबूत बनाने की योजना** — इसमें 12 राज्य एवं एक संघ राज्य क्षेत्र के 54 पहचाने गये जिले शामिल हैं।

**8. भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ लिमिटेड (TRIFED)** — 1987 में जनजातीय समुदायों के वन उत्पादन एवं लघु

उत्पादों के लिए विपणन सहायता और लाभकारी मूल्य उपलब्ध कराने तथा शोषण एवं बिचौलियों से बचाने के लिए बनाया गया है।

**9. अनुसूचित जनजातियों के लिए कोचिंग योजना** — 2007-2008 में प्रारंभ की गयी। इस योजना के तहत जनजातीय छात्रों के लिए विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं, जैसे सिविल सेवा, राज्य सिविल सेवा, इंजीनियरिंग, बैंक आदि की तैयारी के लिए सहायता प्रदान की जाती है।

**10. अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति** — अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गयी है।

**11. राजीव गाँधी अध्येतावृत्ति योजना** — 2005-2006 में प्रारंभ की गयी। इस योजना के अंतर्गत M.Phil. एवं Ph.D. कर रहे छात्रों को शोध छात्रवृत्ति दी जाती है, जो लगभग पाँच वर्षों के लिए होती है।

**12. अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय समुद्रपारीय छात्रवृत्ति योजना** — यह योजना इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और विज्ञान के क्षेत्र में विदेशों में मास्टर स्तर के पाठ्यक्रम, शोध, पोस्ट-

दिवेदी, राजेश, & तिवारी, नितेश. (2020–2021). *भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था*. प्रिंटैक्स इंडिया.

शर्मा, जी. एल. (2015). *सामाजिक मुद्दे*. रावत पब्लिकेशन्स.

सिंह, जे. पी. (2001). *सामाजिक अनुसंधान की विधियाँ*. रावत पब्लिकेशन्स.

भारत सरकार, *जनजातीय कार्य मंत्रालय*. (2023). *जनजातीय कार्य मंत्रालय: अंतिम आँकड़े*.

विकासपीडिया. (n.d.). *जनजाति कल्याण: जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार की प्रमुख योजनाओं की जानकारी*. <https://hi.vikaspedia.in/>

Elvin, V. (1938). *The Baiga*. Gyan Publishing House.

Ghurye, G. S. (1983). *The scheduled tribes*. Popular Book Depot.

Singh, K. S. (1997). *People of India: The scheduled tribes (National Series)*. Oxford University Press.

SCST Hub. (n.d.). *एन.एस.एस.एच.* <https://scsthub.in/>

Young, P. V. (1953). *Scientific Social Survey and Research*. Prentice-Hall.

## निष्कर्ष

जनजातियों के विकास के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक अलग नीति अपनायी, जिसके अंतर्गत उसने इनके क्षेत्र को अलग किया तथा वेरियर एल्विन की नीति को स्वीकार किया। घुरिये ने इन्हें पिछड़े हिन्दू बताया। आजादी के बाद भारत सरकार ने इनके लिए पृथक्करण, एकीकरण तथा आत्मसातकरण की नीतियों पर भी विचार किया। जनजातियों के विकास के लिए संविधान में व्यवस्था की गयी है तथा आरक्षण एवं छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गयी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्वयंसेवी संगठनों और ईसाई मिशनरियों द्वारा भी इनके विकास के लिए प्रयास किये गये हैं। जनजातीय विकास के लिए आवश्यक है कि सभी लोग मिल-जुलकर, उनकी समस्याओं का सतही अध्ययन करके, उनकी संस्कृति का ध्यान रखते हुए, निष्पक्ष और निःस्वार्थ भाव से उनकी समस्याओं को दूर करने का प्रयास करें। तभी सही मायने में जनजातीय विकास संभव होगा।

## संदर्भ सूची:

आहूजा, राम. (2021). *सामाजिक समस्याएँ* (पुनर्मुद्रित संस्करण). रावत पब्लिकेशन्स.